उत्तराधिकार विधि

(धर्मशास्त्रीय विधि एवं उत्तराधिकार कानून के संदर्भ में)

***प्रो. शालिनी सक्सेना**

धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में व्यवहार के अन्तर्गत समाज में होने वाले विविध विवादपदों की प्रकृति, स्वरूप एवं उनके निर्णयों का विस्तार से विवेचन किया गया है। ये विवाद अट्ठारह प्रकार के हो सकते हैं। इनमें सम्पत्ति सम्बन्धी विवाद दायभाग के अन्तर्गत वर्णित हैं। किसी की सम्पत्ति के विभाजन की परिस्थितियों, आधार, अधिकार आदि का दायभाग में विस्तार से वर्णन किया गया है। परवर्तीकाल में न्यायालयों में भी इन धर्मशास्त्रीय दायविधि का पूर्ण सम्मान देते हुए उनका अनुकरण किया गया। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में दायभाग के सन्दर्भ में उसके विविध सम्प्रदायों के सिद्धान्तों को समन्वयात्मक रूप में स्वीकार कर ही अधिनियम का स्वरूप प्रदान किया गया है। यहाँ धर्मशास्त्रीय दायविधि सम्प्रदायों में उत्तराधिकार के निर्णय को प्रस्तुत किया गया है।

विधि किसी भी समाज के आपसी व्यवहार को नियन्त्रित करने का साधन है। प्रारम्भ में ईश्वरप्रदत्त विधि धर्म ही मनुष्यों के कर्तव्यों का नियामक था। धर्म में नैतिक, सामाजिक, धार्मिक कर्तव्यों का प्रतिपादन था। उस समय धर्म, सदाचार, नीति एवं विधि में कोई भेद नहीं था। नरक का भय व्यक्ति को अधर्माचरण से रोकता था। हिन्दू विधि 6000 वर्ष पूर्व प्रचलित होने के कारण विधियों में प्राचीनतम है। प्रत्येक मानव के जो भी कर्तव्य थे वे विधिक और धार्मिक होते थे उनकी अवज्ञा प्रायश्चित्त का कारण बनती थी। मनुष्य परलोक एवं भविष्य के भय से चिन्तित रहता था। श्रुति और स्मृति को हिन्दू विधि का मूल स्रोत माना गया है। हिन्दू दायविधि में किसी भी पुरुष को अपनी स्वयं अर्जित सम्पत्ति तथा दायविधि में सम्पूर्ण सम्पत्ति के विषय में यह अधिकार है कि उसके वह किसी भी प्रकार से खर्च अथवा हस्तान्तरित कर सकता है। 1956 से पहले उसे सहदायिक सम्पत्ति के अविभाजित भाग को हस्तान्तरति करने का अधिकार नहीं था।

हिन्दू विधि में दाय भाग के सम्बन्ध में दो सम्प्रदाय प्रसिद्ध रहे हैं मिताक्षरा एवं दायभाग। इसका आधार याज्ञवल्क्य की मिताक्षरा एवं जीमतवाहन का दायभाग था। दायभाग का प्रचलन बंगाल में एवं मिताक्षरा का शेष भारत में प्रचलन था। दायभाग सम्प्रदाय में जीमूतवाहन का दायभाग, रघुनन्दन का दायतत्त्व और श्रीकृष्ण तर्कालंकार का दायक्रमसंग्रह प्रमुख हैं। मिताक्षरा सम्पद्राय चार उपसम्प्रदायों में विभक्त है। 1.वाराणसी सम्प्रदाय का ग्रन्थ वीरमित्रोदय, महाराष्ट्र या बम्बई सम्प्रदाय का ग्रन्थ व्यवहारमयूख, मिथिला सम्प्रदाय के विवादरत्नाकर, विवादचन्द्र एवं विवदचिन्तामणि, द्रविड़ या मद्रास सम्प्रदाय के स्मृतिचन्द्रिका, वरदराज का व्यवहार निर्णय पराशरमाधवीय एवं सरस्वतीविलास।

नारद ने दायभाग व्यवहारपद को ऐसा माना है जिसमें पुत्र अपने पिता के धन के विभाजन का प्रबन्ध करते हैं। स्मृतिचन्द्रिका के अनुसार दाय वह धन है जो माता या पिता से किसी पुरुष को प्राप्त होता है।यथा,

पितृद्वारागतं द्रव्यं मातृद्वारागतं च यत्।
कथितं दायशब्देन तद्विभागोऽधुनोच्यते।।

निघण्टु ने विभाजित होने वाले पैतृक धन को दाय कहा हैः– विभक्तव्यं पितृद्रव्यं दायमाहुर्मनीषिणः। व्यवहारमयूख के अनुसार दाय की परिभाषा हैः– असंसृष्टं विभजनीयं धनं दायः। अर्थात् दाय वह धन है जो विभाजित होता है और जो उन लोगों को नहीं प्राप्त होता जो फिर से एकसाथ हो जाते हैं। वस्तुतः जहाँ कहीं दाय शब्द प्रयुक्त है उसका अर्थ है सम्बन्धियों के धन का सम्बन्धियों में विभाजित होना ओर उसका कारण मृतस्वामी से उनका सम्बन्ध है। याज्ञवल्क्य के अनुसार दाय का अर्थ है वह धन जो उनके स्वामी के सम्बन्ध से किसी अन्य की सम्पत्ति हो जाता है। मिताक्षरा दाय के दो भेद मानती है– अप्रतिबन्ध दाय और सप्रतिबन्ध दाय किन्तु दाय भाग ने केवल सप्रतिबन्ध दाय को ही स्वीकार किया है। उनके अनुसार पूर्व स्वामी की मृत्यु या पतित हो जाना आदि कारण के उपरान्त ही किसी अन्य में स्वामित्व उत्पन्न होता है। इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त को उपरमस्वत्ववाद कहा गया है जबकि मिताक्षरा का सिद्धान्त जन्मस्वत्ववाद है। यही दायभाग एवं मिताक्षरा का प्रमुख भेद है। दाय भाग के अनुसार पुत्र, पौत्र या प्रपौत्र पिता या अन्य पूर्वज की सम्पत्ति पर कुल में जन्म हो जाने के कारण ही स्वत्व का अधिकार नहीं पाते।

दायभाग ने स्वीकार किया है कि कुछ स्मृतियों में जन्मस्वत्ववाद को माना है–क्वचिद् जन्मनैवेति। दायभाग के अनुसार अप्रत्यक्षरूप से जन्म को दाय का कारण मानना चाहिए क्योंकि पिता एवं पुत्र का सम्बन्ध जन्म पर ही आधारित है और पिता की मृत्यु पर ही पुत्र का स्वत्व उदित होता है। यद्यपि स्वत्व प्रत्यक्ष रूप से मृत्यु के उपरान्त ही प्रकट होता है किन्तु जन्म उसका कारण कहा जा सकता है और पुत्र प्रथम उत्तराधिकारी है क्योंकि यह अपने पिता के पुत्र के रूप में जन्म लेता है। संक्षेपतः दायभाग एवं मिताक्षरा के अन्तर को इस प्रकार समझा जा सकता हैः–

1 दायभाग जन्मस्वत्ववाद नहीं स्वीकार करता, किन्तु मिताक्षरा ने इसे स्वीकार किया है।

2 दायभाग का कथन है कि दाय का उत्तराधिकार तथा उत्तराधिकारियों का क्रम धार्मिक पात्रता या क्षमता के सिद्धान्त से निश्चित होता है। किन्तु मिताक्षरा सम्प्रदाय का कथन है कि इस विषय में रक्त सम्बन्ध ही नियमन उपस्थित करता है।

3 दायभाग मानता है कि संयुक्त परिवार के सदस्य अपने भाग (अंश) प्रायः पृथग्भाव से रखते हैं और नाप जोख या सीमा निर्धारण द्वारा किये गये विभाजन के बिना भी उनका विनिमय कर सकते हैं।

4 दायभाग के अनुसार संयुक्त परिवार में भी पति की मृत्यु पर सन्तानहीन होने पर भी विधवा अपने पति के अंश का अधिकार पाती है। किन्तु मिताक्षरा में यह अधिकार उसे प्राप्त नहीं होता।

किसी पुरुष की मृत्यु के उपरान्त उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारियों में विभाग किया जाता था। मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर ने विभाजन की परिभाषा करते हुए कहा हैः– विभागो नाम द्रव्यसमुदायविषयाणामनेकस्वाम्यानां तदेकदेशेषु व्यवस्थापनम्। अर्थात् जहाँ संयुक्त स्वामित्व हो वहाँ सम्पूर्ण सम्पत्ति के भागों की निश्चित व्यवस्था ही विभाग है। जबकि दाय भाग के अनुसार विभाग गोली या मिट्टी का ढ़ेला फैंकने से भाग्यवश प्राप्त स्वमित्व का द्योतक है जो केवल एक अंश से मिलकर उदित होता है।.

मिताक्षरा विधि में उत्तराधिकार

याज्ञवल्क्य की मिताक्षरा टीका के अनुसार जब कोई पुरुष बिना वसीयत किए स्वयं अर्जित सम्पत्ति छोड़कर मर जाता है तो उसके उपरान्त वह सम्पत्ति रक्त सम्बन्ध के आधार पर उसके उत्तराधिकारियों को मिलती है। मिताक्षरा

शाखा की चारों उपशाखाओं ने उत्तराधिकार के सम्बन्ध में एकराय होते हुए भी उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में पृथक् पृथक् मत का प्रतिपादन किया है। उत्तराधिकार के सम्बन्ध में उनका मत है कि मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी को सम्पत्ति में से अपना अधिकार लेने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। ऐसे अधिकार को स्थगित नहीं किया जा सकता। विभाजन प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के आधार पर होता है। यह विभाजन शाखा अनुसार और शाखा में भी व्यक्ति के अनुसार होता हैं। उत्तराधिकार को अनुबन्ध द्वारा परिवर्तित नहीं किया जा सकता। पुरुष उत्तराधिकारी का पूर्ण हित एवं स्त्री उत्तराधिकारी का आजीवन हित होता है। उत्तराधिकारी स्त्री की मृत्यु के बाद वह सम्पत्ति उस मृतक के उत्तराधिकारियों के पास जाती थी। पूर्णरक्त सम्बन्ध को अर्द्धरक्त सम्बन्ध से प्राथमिकता दी गई थी। नजदीकी सम्बन्ध दूरस्थ सम्बन्ध की अपेक्षा उत्तराधिकार में प्राथमिकता रखते थे। अर्थात् यदि किसी मृतक का एक भाई जीवित है और दूसरे मृतक भाई का पुत्र जीवित है तो मृतक की सम्पत्ति उसके जीवित भाई को जाएगी मृतक भाई के पुत्र को नहीं। रक्त सम्बन्ध को सीमित करने के लिए विज्ञानेश्वर ने सपिण्ड अर्थात् सात पीढ़ी तक की व्यवस्था स्वीकार की है जिसमें स्त्री शामिल नहीं है। मिताक्षरा शाखा में सम्पत्ति के उत्तराधिकारी क्रमशः इस प्रकार कहे गए हैंः– सपिण्ड, उनमें भी पहले गोत्रज, फिर समानोदक उसके बाद बन्धु। सपिण्ड न होने पर गुरु, उसके अभाव में शिष्य, उसके अभाव में गुरुभाई (सहपाठी), यदि इनमें से कोई भी न हो तो मृतक की सम्पत्ति का अधिकारी राजा होता था। गोत्रज सपिण्ड में छः पीढ़ी तक के पूर्वज, वंशज और पूर्वजों के वंशज सम्मिलित है। चौदह पीढ़ी तक समानोदक एवं उनके बाद बन्धु सम्पत्ति के अधिकारी होते हैं। बन्धुओं में भी पहले आत्मबन्धु, फिर पितृबन्ध और उसके बाद मातृबन्धु सम्पत्ति प्राप्त करते हैं। पिता के भाई का पुत्र गौत्रज सपिण्ड तो पिता की बहिन का पुत्र बन्धु कहलाता है।

याज्ञवल्क्य के अनुसार पिता की सम्पत्ति का पहले अधिकारी उसके पुत्र हैं। उसके बाद क्रमशः पत्नी, पुत्री, मातापिता, भाई, भाईयों के पुत्र, गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति, बन्धु, शिष्य, ब्रह्मचारी में पहले पहले के अभाव में बाद बाद वाला उत्तराधिकारी कहे गए हैंः–

पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा।
तत्सुता गोत्रजा बन्धुशिष्यसब्रह्मचारिणा।

दायभाग के अनुसार उत्तराधिकार

जीमूतवाहन के अनुसार किसी पुरुष को कहीं से भी प्राप्त होन वाली सम्पत्ति उसकी स्वयं अर्जित सम्पत्ति होगी और उसे उक्त सम्पत्ति के व्यय अथवा हस्तान्तरण का पूर्ण अधिकार होगा। वह वसीयत द्वारा भी सम्पत्ति का हस्तान्तरण कर सकता है। यदि बिना वसीयत किए उसकी मृत्यु हो जाती है तो उत्तराधिकार के नियमानुसार वह सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारियों को मिलेगी। दायभाग ने रक्तता के सिद्धान्त को न अपनाकर पिण्डदान के सिद्धान्त को अपनाया है जिसने मृतक का पिण्डदान किया है वह व्यक्ति प्राथमिकता से उसका उत्तराधिकारी होगा। मृतक एव उसका उत्तराधिकारी समान पूर्वज का पिण्ड दे सकते हैं। दायभाग ने स्त्रियों को भी सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकार दिया है। उनके अनुसार वे सभी स्त्रियां सम्पत्ति की अधिकारी होगी जो यदि पुरुष होती तो पिण्डदान की अधिकारी होतीं। जीमूतवाहन ने उत्तराधिकारी का निर्णय करने के लिए तर्पण के सिद्धान्त को मान्यता दी है। वे सभी सपिण्ड माने जाते हैं जो उस समान पूर्वज को पिण्डदान करते हैं जिन्हें जीवित रहते मृतक भी पिण्डदान करता। दायभाग के अनुसार एक पुरुष जीवित रहते अपने पिता की ओर तीन पूर्वजों को पिण्डदान करता है तथा माता कि तरफ के तीन पूर्वजों को पिण्डदान करता है। इससे आगे पिता की तीन पीढ़ी को अर्द्ध पिण्डदान एवं इसी प्रकार माता की अगली तीन पीढ़ी को अर्द्धपिण्डदान करता है। इस प्रकार इन पूर्वजों को जो मृतक पिण्डदान करता है उन्हीं पूर्वजों

को पिण्ड देने वाला अन्य व्यक्ति या स्त्री उसके सपिण्ड है। जीमूतवाहन ने तीन प्रकार के सपिण्ड माने हैं:– सपिण्ड, साकुल्य और समानोदक। उनके अनुसार तीन पीढ़ी तक सपिण्ड उससे अगली तीन पीढ़ी साकुल्य और मृतक सहित सात पीढ़ी समानोदक हैं। मिताक्षरा विधि में बहिन का पुत्र व पौत्रों का पुत्र बन्धु होने के कारण सपिण्ड व समानोदक उत्तराधिकारी नहीं होने से सम्पत्ति के अधिकारी नहीं होते लेकिन दायभाग के अनुसार बन्धु, साकुल्य व समानोदक से पहले सम्पत्ति के अधिकारी होते हैं।

मिताक्षरा एवं दायभाग विधि में भेद

1 मिताक्षरा के अनुसार उत्तराधिकार रक्त सम्बन्ध विधि पर आधारित है जबकि दायभाग में तर्पण के आधार पर उत्तराधिकार का निर्णय किया जाता है।

2 मिताक्षरा में सम्पत्ति प्राथमिकता से गोत्रज सपिण्ड, समानोदक और फिर बन्धुओं को जाती है जबकि दायभाग में पहले सपिण्ड फिर साकुल्य और फिर समानोदकों को मिलती है।

3 मिताक्षरा के अनुसार बन्धु समानोदकों के बाद उत्तराधिकारी होते हैं जबकि दायभाग के अनुसार बन्धु कई बार सपिण्डों के साथ साथ सम्पत्ति प्राप्त करते हैं।

4 मिताक्षरा के अनुसार मृतक के मातापिता के जीवित होने पर पहले सम्पत्ति माता को फिर उनकी मृत्यु पर पिता को मिलती। दायभाग के अनुसार मृतक के पिता को पहले सम्पत्ति मिलती है।

5 मिताक्षरा के अनुसार मृतक के पौत्र ओर प्रापौत्र को संयुक्त आभोगी के रूप में दाय प्राप्त होता है जबकि दायभाग के अनुसार उत्तराधिकारी केवल सह आभोगी होते हैं।

हिन्दू अधिनियम 1956 में उत्तराधिकार के सम्बन्ध में स्त्री और पुरुष में भेद नहीं किया गया है और तर्पण के सिद्धान्त को नकारते हुए रक्त सम्बन्ध के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। इसमें प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त, निकटता के सम्बन्ध का सिद्धान्त, गोत्रज को बन्धुओं से प्राथमिकता प्रथम सूची क उत्तराधिकारियों में वंशवार और दूसरी सूची के वारिसों में व्यक्तिवार के सिद्धान्त को अपनाया गया है। कोई भी हिन्दू पुरुष या स्त्री अपनी सम्पत्ति उत्तराधिकार अधिनियम 1925 के प्रवधानों से किसी को भी हस्तान्तरित कर सकता है, यह आवश्यक नहीं कि वह उसका रिश्तेदार ही हो।

इस प्रकार वर्तमान हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम ने धर्मशास्त्रीय दायविधि को स्वीकार करते हुए किंचित् संशोधन के साथ ही स्वीकार किया गया है।

***प्रोफेसर**
भाषाविज्ञान
राजकीय महाराज आचार्य संस्कृत महाविद्यालय,
जयपुर

संदर्भ सूची

1. व्यवहारमयूख पृ. 58
2. याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय मिताक्षरा पृ. 265
3. याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय–135